

## जगत् निर्दोष सब मेरा दोष

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

यह जगत् ईश्वर रचित है या स्वयं इसकी रचना हो जाती है इस पर दार्शनिकों के अलग-अलग मत हैं। कुछ लोगों का यह मानना है कि जगत् ईश्वर रचित है। यदि इस विचारधारा को माना जाये तो प्रश्न यह उठता है कि क्या इस संसार में होने वाली अच्छाई, बुराई, गरीबी, अमीरी इत्यादि को ईश्वर ने बनाया है। यदि ईश्वर ने बनाया है तो इसका दोष सब ईश्वर पर है। ईश्वर को सच्चिदानंद, दयालु, सर्वस्रष्टा इत्यादि विशेषणों से विशेषित किया जाता है तो यह सब विशेषण निरर्थक प्रतीत होते हैं। किन्तु अगर यह माना जाये कि इस संसार की रचना करने वाला कोई नहीं है। यह अपने आप बन जाता है। गुण, दोष स्वयं सब मनुष्यकृत हैं। यदि किसी घटना की जिम्मेदारी या उत्तरदायित्व मनुष्य स्वयं वहन करता है और दूसरों पर दोषारोपण नहीं करता तो टकराव टल जाता है। करने वाला मनुष्य है। अतः अच्छाई और बुराई की जिम्मेदारी मनुष्य की है। विश्व का प्रत्येक पदार्थ अपने परिणामन से गति-प्रगति, विकास-ह्रास पाता है। चेतन भी अपने ह्रास-विकास के लिए स्वयं ही उत्तरदायी है। जिनशासन इस विशिष्ट निर्णय से प्रत्येक चेतना अपने एक नये स्वावलम्बन का पात्र बन जाता है। आत्म स्वातन्त्र्य की एक नयी दृष्टि का विकास होने लगता है। जो करना है, स्वयं को करना है। यह सूत्र प्रत्येक चेतना को एक नयी प्रेरणा प्रदान करता है। साथ ही उसके पुरुषार्थ को सक्रिय कर देता है। आत्म स्वातन्त्र्य मानव जीवन की सर्वोत्कृष्ट संपदा है। व्यक्ति अपने आप में एक विचार जगत लेकर चलता है, उसकी प्रवृत्तियाँ निरन्तर विचारों से प्रभावित होती हैं। परापेक्षा और परनिर्भरता कुछ ऐसी मानसिक कमजोरियाँ हैं जो प्रायः आम व्यक्ति में पाई जाती हैं। व्यक्ति परनिर्भर होकर एक विलक्षण निश्चितता का अनुभव करता है। सादगी का भी अपना एक दर्शन है, इसे हम आत्मशांति का दर्शन कह सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के मन में अपने आपको "जो वह है उससे भी अधिक श्रेष्ठ और प्रशंसनीय" दिखाई देने का भाव विद्यमान रहता है। यह भाव इतना श्रेष्ठ और व्यापक होता है कि इसको समाप्त कर देना अत्यंत दुष्कर होता है। इसके अनेक कारण हो सकते हैं, सबसे बड़ा कारण तो यह है

कि प्रारंभिक स्तर पर इसे कोई बुरा भाव नहीं समझा जाता। इतना ही नहीं अधिकतर तो इस भाव को चारों तरफ से प्रशंसा ही मिलती है, इसका परिणाम यह होता है कि भाव व्यक्ति के मन में दिनों-दिन प्रगाढ़ होता जाता है और इतना अधिक फैल जाता है कि जिसे प्रारंभ में अच्छाई समझा गया वह भोंडा प्रदर्शन मात्र बनकर रह जाता है। प्रदर्शनेच्छा से अभिभूत मानव अपने खान-पान, पहनावे से लेकर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जहाँ तक की पारस्परिक व्यवहारों में भी एक नाटक ही करता रहता है, उसकी सारी बुद्धि केवल एक बात की तरफ केन्द्रित हो जाती है कि वह अच्छा कैसे दिखाई दे। व्यक्ति अपने आप में कैसा भी है वह उसकी वास्तविकता है। जब वास्तविकता को छुपाकर केवल दिखावा करने की प्रवृत्ति चल पड़ती है तो यह एक ऐसी प्रवृत्ति है कि उसका अंत ही कठिन हो जाता है। इनमें कोई संदेह नहीं कि मानव ने अपने रहन-सहन और व्यवहारों की नग्नता को ओट देने के लिए एक सभ्यता का निर्माण किया है। सभ्यता के लोक व्यापी प्रतिमान होते हैं और उन प्रतिमानों की सुरक्षा करना प्रत्येक सामाजिक व्यक्ति के लिए अनिवार्य हो जाता है। सभ्यता के प्रतिमानों की सुरक्षा को हम प्रदर्शन नहीं कह सकते। प्रदर्शन रूप प्रतिमान वे होते हैं जिनमें सभ्यता के भाव मुख्य नहीं होकर प्रदर्शन के भाव तीव्र होते हैं। अपने ठाठ-पाट वैभव और देह को अन्य व्यक्तियों के सामने अलंकृत करके प्रस्तुत करना, वह प्रदर्शन है जिसे आम व्यक्ति साश्चर्य देखा करे और उस तरफ आकर्षित हों किन्तु यथार्थ में वह भव्यता जो दिखाई देती है, होती नहीं है। सभ्यता के प्रतिमान की सुरक्षा में भी कुछ अंशों में तो यह होता है किन्तु वह स्थापित लोक स्वीकृत प्रतिमान होता है। अतः वह हेय नहीं है। जीवन को जिन महापुरुषों ने बहुत गहरे तक समझा है, उन्होंने प्रदर्शन दिखावा और आडम्बर को नितान्त अनावश्यक और हेय घोषित किया है। शास्त्रों में उनका स्पष्ट निषेध है। "सव्वे आभरणा भारा" कह कर हमारे तत्वज्ञों ने अलंकार आदि सभी प्रदर्शन प्रदायक वस्तुओं को भार स्वरूप घोषित कर उन्हें त्याग देने का संदेश दिया है। अत्यंत श्रम और बौद्धिक प्रक्रिया पूर्वक व्यक्ति जो धन कमा रहा है उसे केवल प्रदर्शन और दिखावे में पानी की तरह व्यर्थ बहाए जा रहा है। आर्थिक दृष्टि से संपन्न होकर भी प्रदर्शन के आवेग में फिर विपन्नता की स्थिति में पहुंचा जाता है। प्रदर्शन प्रियता का यह भाव ऐसा न समझें कि मात्र लोक व्यवहार में ही व्याप्त है, धर्म क्षेत्र में भी इसकी घुसपैठ कम

नहीं है। जो भाव लोक व्यवहार में व्याप्त है धर्म क्षेत्र में भी आये बिना रह नहीं सकते क्योंकि वहाँ भी कार्य करने वाले वे ही मानव होते हैं जो प्रदर्शन प्रियता से परिपूर्ण है। आज हमारा राष्ट्र हिंसा की लपटों में झुलस रहा है। चारों तरफ हत्या और मार-काट फैली हुई है। प्रत्येक मानव असुरक्षित तथा भयग्रस्त है। धर्म प्रधान भारत देश में यह स्थिति अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है। धर्म संस्थान, धर्म उपदेश तथा धर्म आयोजनों के बढ़ते हुए भी यह सब कुछ हो रहा है, ऐसा क्यों? यथार्थ परक दृष्टि से देखा जाए तो इस सारी विडम्बना के पीछे एकमात्र करुणाहीनता ही मुख्य कारण है। व्यक्ति आज इतना अधिक निष्करुण हो चला है कि बड़ी से बड़ी दुखद दुर्घटना भी उसके मन को विचलित नहीं कर पाती।